P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-3* November- 2017
E: ISSN NO.: 2349-980X Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika

ऋग्वेद–ऋषि के 'ऋत' और गांधी के 'सत्य' की अवधारणा में अद्‌भुत समानता है

सुरेन्द्र डी. सोनी
एसोसिएट प्रोफेसर,
इतिहास विभाग,
राजकीय लोहिया स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
चूरू, राजस्थान

सारांश

बाजारवाद के आधुनिक दौर में दार्शनिक प्रत्ययों की विवेचना करना ऊपरी तौर पर तो अप्रासंगिक लग सकता है, लेकिन वास्तविक रूप में दर्शन ही वह प्रमुख आधार है, जिस पर सारी सामाजिक–सांस्कृतिक व्यवस्था टिकी हुई है। कोई भी व्यवहार सिद्धांत के गर्भ से ही जन्म लेता है। महात्मा गांधी आधुनिक विश्व के उन गिने–चुने व्यक्तियों में से हैं, जिन्होंने राजनीति में प्रत्यक्ष रूप से दर्शन को स्थान दिया। कहा जाता है कि वे विदेशी दार्शनिकों से प्रभावित थे और उनकी 'सत्य' की अवधारणा भी उन्हीं से प्रेरित थी। इस पत्र के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि गांधी का 'सत्य' मूलतः 'ऋग्वेद' से निसृत 'ऋत' की अवधारणा से प्रेरित है। उन्हें इस प्रेरणा का उद्‌घाटन करने की भी कोई आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि 'ऋत' हमारी संस्कृति की अंतर्निहित प्रेरणा है। 'ऋग्वेद' के ऋषियों का 'ऋत' और गांधी का 'सत्य' वस्तुतः समान प्रत्यय ही हैं। इस आधार पर बदलते विश्व में नवीन अवधारणाओं की स्थापना करके हम भौतिकता के गर्त में डूब रहे विश्व को सुख–शांति का नवीन मार्ग दिखा सकते हैं।

मुख्य शब्द : दर्शन, वेद, ऋग्वेद, ऋत, सत्य, धर्म, दिव्य नियम, ईश्वर, प्रत्यय, एक्टिविस्ट, अर्त, अश, सत्याग्रह, व्रत।

प्रस्तावना

वैश्वीकरण की विकृत अवधारणा में जी रहे इस युग में दुनिया जैसे खेमों में बँट गई है और समस्त आभ्यान्तरिक मूल्यों की उपेक्षा करके एक छोटे, किन्तु पूँजी को केन्द्रीभूत किए हुए,वर्ग द्वारा भोले–भाले लोगों को केवल 'बाजार' की ओर धकेला जा रहा है। 'दर्शन',जिससे प्रेरित होकर हमारे समाज के नियन्ता सभी लोगों के अधिकतम सुख का आदर्श सामने रखते हुए एक सुन्दर संसार की कल्पना करते थे, आज तथाकथित बुद्धिजीवियों के हाथ का औजार हो गया है। अब भी 'दर्शन' सिद्धान्त से व्यवहार की ओर चलने का आधार तो है, लेकिन लगता है कि बड़ी चतुराई से पिरामिड को उलटा करके देखा और दिखाया जा रहा है। ऐसे प्रतिगामी युग में दुनिया को कहीं से कोई मार्ग दिखाई देगा, तो निश्चय ही वह भारत की भूमि से प्रवृत्त होगा। यदि दर्शन को हम मात्र अंग्रेजी शब्द 'फिलॉसफ़ि' का पर्याय समझते रहेंगे, तो हमारे विवेक पर पूरी तरह परदा पड़ जाएगा, क्योंकि पश्चिम में दर्शन को एक 'अकादमिक डिसिप्लिन' ही माना जाता है। भारत में 'दर्शन' 'अकादमिक डिसिप्लिन' नहीं, अपितु जीवन का आधार है। हमारे यहाँ 'दर्शन' चिन्तकों और विचारकों की वह महान् और प्राचीन धरोहर है, जो 'ऋग्वेद' के पूर्व से अस्तित्व में थी। जग के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने वाली यह धरोहर 'ऋत' और 'सत्य' की कालजयी अवधारणाओं पर आधारित है। ऋग्वैदिक मुनियों से लेकर गांधी तक इन प्रत्ययों को व्याख्यायित करने की अपने देश में दीर्घ परम्परा है।

अध्ययन का उद्देश्य

'ऋग्वेद' से निसृत 'ऋत नियम' की गांधी–दर्शन के 'सत्य' से तुलना करके दोनों के मध्य इस प्रकार का अंर्तसम्बन्ध स्थापित करना, जिससे यह सिद्ध हो कि भारत के सनातन मूल्य कभी बदलते नहीं, बल्कि देश, काल व परिस्थिति के अनुसार उनकी व्याख्याओं में विभिन्नता आ जाती है।

गांधी ऋग्वैदिक ऋषि–परम्परा के आधुनिक प्रतिनिधि हैं

'ऋग्वेद', जिसे संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी विश्व का सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ माना है और जो भाषा–शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर आज से कम से कम चार हजार वर्ष पूर्व का ठहरता है, से यह प्रकट होता है कि हमारे देश में पुराण–कथाओं की परम्परा पहले से ही चल रही थी। उन कथाओं को ही आधार

बनाकर वेदों की रचना हुई। इस प्रकार भारत विश्व में नीतिपरक चिन्तन की ऐतिहासिक परम्परा का वास्तविक प्रतिनिधित्व करता है। भारतीय चिन्तन की शास्त्रीयता, उदात्तता और गरिमा के चलते यहाँ जन्मे महापुरुषों ने समय–समय पर सामाजिक आदर्शों का सरल और अनुकरणीय रूप प्रस्तुत किया है। यह एक चकित कर देने वाला तथ्य है कि हम जीवन की व्यावहारिकता में बहुत अधिक उलझ गए हैं और यहां तक कि हम यह खोजना भी जरूरी नहीं समझते कि हमारे आधुनिक मनीषी जो बात कहते हैं, उसका उत्स क्या है? इसी कारण हम सभी आधुनिक विचारों को पश्चिम से आयातित ही मान बैठते हैं। वस्तुतः पश्चिमी नहीं, भारतीय दर्शन के आधार पर ही गांधी जैसे लोग दर्शन के ऐसे सेतु दे पाए हैं, जो सिद्धांत और व्यवहार के ध्रुवों को कुशलता से जोड़ते हैं। आज हमें ऐसे ही किसी सेतु की आवश्यकता है, जो सत्ता व पूँजी के केन्द्रीयकरण की भयानक प्रतिस्पर्धा के चलते पतन की ओर जा रहे समाज को रोक ले। हर बार की तरह आशा का झरना हमें अपनी धरती से ही प्रस्फुटित करना होगा। इसलिए आवश्यक है कि हम अपने आधुनिक मनीषियों, जो अपने दौर में 'एक्टिविस्ट' रहे हैं, के विचारों की प्राचीन ऋषियों के विचारों से तुलना करें और यह देखें कि प्राचीन और आधुनिक आदर्श, परस्पर असंपृक्त दिखाई देते हुए भी, किस रूप में संपृक्त हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में गांधी जी के विचार और व्यवहार की वैदिक परम्परा के अनुसार व्याख्या किया जाना प्रासंगिक प्रतीत होता है, क्योंकि उन्होंने विगत सौ वर्षों में संसार के सुधारवादियों को अपने दर्शन से प्रभावित किया है।

मोहनदास करमचंद गांधी ने स्वाधीनता से पूर्व भारत में जो आन्दोलन चलाए, वे राजनीति के अध्येताओं के लिए केवल सत्ता के परिवर्तन के लिए किए गए अभियान हो सकते हैं, लेकिन उन आंदोलनों की पद्धति और उनके पीछे के दर्शन पर गहराई से विचार किया जाए, तो प्रतीत होता है कि उनके आंदोलन भारतीय आदर्श से प्रेरित ऐसे नियोजित कार्यक्रम थे, जिनमें 'सत्य' के प्रति विशेष आग्रह था। गांधीजी का हर कदम भारत की सांस्कृतिक अन्तर्धारा का प्रतिनिधित्व करता था।

कुछ लोग कहते हैं कि गांधीजी के दर्शन पर विदेशी प्रभाव था, गांधीजी एक प्रयोगधर्मी अध्येता थे। उन्होंने भारतेतर दर्शन–परम्पराओं को भी अच्छी तरह समझा–परखा था, लेकिन वे उन भारतीय सिद्धान्तों को ही नए रूप में रखने के पक्षपाती थे, जो हमारी ऐतिहासिक परम्परा के अंग रहे हैं। गांधी कहते हैं, 'मेरे उपदेश और सीख भावुकतापूर्ण व्यवहार से असंगत नहीं हैं। मैं वही सीख देता हूँ, जो पुरातन से चली आ रही है और जो भी उपदेश देता हूँ, उस पर स्वयं आचरण करने की कोशिश करता हूँ।'

महापुरुषों की जब हम बात करते हैं, चाहे वे वेदों की रचना करने वाले ऋषि हों, वेदों को चुनौती देने वाले महावीर और बुद्ध हों अथवा आधुनिक युग में राजनैतिक आन्दोलनों को आध्यात्मिकता से जोड़कर देखने वाले गांधी हों, तो यह देखने में आता है कि लोग उनमें ईश्वर की प्रतिष्ठा कर देते हैं। फलस्वरूप उनके साथ कोई न कोई 'वाद' जुड़ जाता है। यह वाद वैदिक ऋषियों के सापेक्ष 'वेदवाद' और गांधी के सापेक्ष 'गांधीवाद' हो जाता है। देखा जाता है कि कम जानकारी रखने वाले लोग भी किसी न किसी 'वाद' के समर्थन या विरोध में लामबंद होकर आपस में टकरा जाते हैं, जबकि होना यह चाहिए कि विरोधी विचार रखने वाले लोग आपस में साम्य स्थापित करके चलें।

'ऋत' और 'सत्य' एक ही सिक्के के दो पहलू हैं

गांधीजी की राजनैतिक आध्यात्मिकता में 'सत्य' और 'अहिंसा' जैसे प्रत्यय और उनके निहितार्थ सदैव ही विद्वानों का ध्यान आकर्षित करते आए हैं। आवश्यकता इस बात की है कि देश, काल व परिस्थिति के अधुनातन संदर्भों में इन प्रत्ययों की पुनर्समीक्षा की जाए। वे जिन अर्थों में 'सत्य' शब्द का प्रयोग करते हैं, उन अर्थों पर अगर गहरी दृष्टि डाली जाए, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका 'सत्य' केवल जैसा देखा, सुना या कहा गया, उसे उसी रूप में प्रकट कर देना नहीं है। उनका दर्शन एक मौखिक अथवा किताबी निर्देश भी नहीं है। इससे आगे बढ़कर उनका 'दर्शन' एक ऐसे प्राकृतिक नियम का प्रतिनिधित्व करता है, जो इतना व्यापक है कि उससे हमारे जीवन के समस्त मूल्य निर्दिष्ट हो सकते हैं। उनका 'सत्य' 'ऋग्वेद' से निसृत 'ऋत' की अवधारणा के बहुत निकट दिखाई देता है, जिसके अनुसार सृष्टि की एक स्वाभाविक व्यवस्था होती है और उसमें किसी भी प्रकार का विचलन आने से सम्पूर्ण व्यवस्था बाधित हो जाती है। इस स्वाभाविक व्यवस्था को, जिसे हम इस संसार की एक प्राकृतिक व्यवस्था भी कह सकते हैं, संज्ञा के रूप में अपने–अपने नाम दिए जा सकते हैं। ऋषि इसे 'ऋत' कहें अथवा गांधी इसे 'सत्य' कहें, कोई अन्तर नहीं पड़ता। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

'ऋत' और 'सत्य' परस्पर असम्बद्ध नहीं हैं

'ऋग्वेद' में ऋषियों ने प्राकृतिक व्यवस्था 'ऋत' को बनाए रखने के लिए बार–बार मनुष्यों का ही आह्वान किया है और गांधी की भी समस्त अपेक्षाएं उनसे ही हैं। यदि 'ऋत' मात्र एक दार्शनिक प्रत्यय होता, तो उसे मनुष्यों के आचरण का आधार बनाकर कभी व्याख्यायित नहीं किया जाता। इसी प्रकार गांधीजी का 'सत्य' मात्र आचरण का एक नियम होता, तो वे निश्चय ही यह नहीं कहते कि 'सत्य' ही 'ईश्वर' है और 'ईश्वर' ही 'सत्य' है।

यह समीचीन है कि इस प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन की आधारभूमि तैयार की जाए, जिस पर देश, काल और परिस्थिति की दृष्टि से पूर्णतः विलग दिखाई देने वाली और सामान्यतः असम्बद्ध मानी जाने वाली अवधारणाओं को भी सापेक्षता की दृष्टि से देखा जा सके। प्रथम दृष्टया 'ऋग्वेद' के 'ऋत' की और गांधीजी के 'सत्य' की अवधारणा को समरूपता से देखना असम्बद्ध लग सकता है, लेकिन गहराई से विचार करने पर यह असम्बद्धता टूट जाती है। असल में "ऋत' और 'सत्य' परस्पर असम्बद्ध हैं ही नहीं।

'ऋत' और 'सत्य' दोनों ही सनातन हैं

गांधीजी कहते हैं कि मेरे लिए 'सत्य' सर्वोच्च सिद्धान्त है, जिसमें अनेक अन्य सिद्धांत समाविष्ट हैं। वे कहते हैं कि मेरा 'सत्य' केवल वाणी का सत्य नहीं है, अपितु विचार का सत्य भी है। वे स्पष्ट करते हैं कि मेरा

'सत्य' सनातन है, इसलिए वह 'ईश्वर' भी है। वेद का ऋषि भी 'ऋत' के सम्बंध में कुछ इसी तरह का स्पष्टीकरण देता है। 'ऋत' शब्द संस्कृत की ऋ गतिप्रापणयोः और ऋ सुगतौ धातुओं से क्त(त) प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है, जिसके विभिन्न शब्दार्थों में 'विधि', 'दिव्य नियम', 'दिव्य सत्य', 'स्थिर' व 'सुनिश्चित नियम' आदि स्वीकृत हैं। इस आधार पर 'ऋग्वेद' के ऋषि के 'ऋत' की प्राकृतिकता व गांधी के 'सत्य' की नैतिकता का एक ही उत्स स्पष्ट होता है।

'ऋत' और 'सत्य' के विषय में सामान्यतः कहा जाता है कि 'ऋत' प्राकृतिक और 'सत्य' नैतिक नियम है, लेकिन यह एक स्थूल विचार है। सूक्ष्मता से देखें तो दोनों नियम पूर्णतः प्राकृतिक हैं और नैतिकता इनके एक घटक के रूप में उभर कर आती है। वी. बी. खेर की पुस्तक 'इन सर्च ऑफ दि सुप्रीम' में गांधी के विचारों को स्पष्ट करते हुए बताया गया है कि विश्व–व्यापार के मूल में बसे नीति–निष्ठ और नियामक तत्व को ही 'ईश्वर' कहा जाता है। इस दृष्टि से विचार किया जाए तो विश्व–व्यापार का नियामक तत्व व उसका प्रणेता एक ही है। इस प्रकार स्पष्ट है कि ईश्वरीय नियमों के मूल में निहित तत्व ही 'सत्य' है। इसी 'सत्य' की खोज कर उसके अनुसार आचरण करना ही ईश्वर–भक्ति है।

'ऋत' अथवा 'सत्य' के कारण ही विश्व एक लय में गतिमान है

भारतीय दर्शन का मूलभूत विचार यह है कि 'ईश्वर' सत् चित् और आनन्दमय है। डी. जी. तेण्डुलकर 'महात्मा' में कहते हैं कि गांधीजी की धर्म–कल्पना उनकी ईश्वर–निष्ठा अथवा यह कहें कि सत्य–निष्ठा का परिपाक है। गांधी मानते थे कि इस संसार के सभी व्यवहार एक ही नैतिक शासन द्वारा प्रेरित और नियन्त्रित होते हैं। दूसरी ओर हम कुछ सहस्राब्दियों पीछे लौटें और 'ऋग्वेद' के मन्त्रों पर विचार करें, तो स्पष्ट होता है कि 'ऋत' ही सम्पूर्ण विश्व की व्यवस्था बनाए रखने में सक्षम है। वस्तुतः 'ऋत' और 'सत्य' एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। 'मुण्डकोपनिषद्' में 'सत्यमेव जयते नानृतम' कहकर स्पष्ट किया गया है कि जो 'ऋत' नहीं है वह अनृत है, मिथ्या है। यदि हम वेदों के अनुसार 'धर्म' शब्द की व्याख्या करें, तो उसे 'ऋत' पर चलने का मार्ग ही बताया गया है अर्थात् जो 'ऋत' की पालना करता है, वह 'धर्म' की पालना करता है।

महात्मा गांधी कहते हैं कि 'धर्म' अपने सृष्टा के बोध और सृष्टा तथा अपने बीच सच्ची अनुरूपता की पहचान होने तक आत्मा को बेचैन रखता है। आत्मा की यह बेचैनी हमारे आचरण–दोष के कारण है। अतः धर्म को सरल रूप में जीवन की आचार–संहिता कहा जाता है और यह माना जाता है कि धर्माचरण करने वाले लोगों के कारण ही यह संसार, विषमताओं से आपूरित होते हुए भी, अपनी शक्ति से गतिशील है। इसी क्रम में 'ऋग्वेद' भी कहता है कि 'सत्येनोत्तभिता भूमिः' अर्थात् 'सत्य' से भूमि प्रतिष्ठित है। 'ऋग्वेद' उद्घाटित करता है कि हर दृष्टि से प्रकाशमान परमात्मा से 'ऋत' अर्थात् दिव्य 'सत्य' की उत्पत्ति हुई है और उसी से लोक–परलोक का समस्त व्यापार चलता है। 'ऋत' के कारण ही यह विश्व एक लय में गतिमान है।

'ऋत' और 'सत्य' नैतिक नियम हैं

कोई भी कल्पना या अवधारणा मूल रूप से किसी अन्य कल्पना या अवधारणा की पूर्णतया समतुल्य नहीं हो सकती। इसीलिए काल के अनुसार उसकी अभिव्यक्ति में अन्तर आ जाता है। सृष्टि और उसके विभिन्न घटकों, जिसमें यह मानव–सभ्यता भी सम्मिलित है, की व्याख्या करते हुए सहस्राब्दियों पहले जिस नियम को हम 'ऋत' कहते हैं, उसे ईरानी भाषा में 'अर्त' अथवा 'अश' के नाम से पुकारा गया।

धर्म–शास्त्रों से ज्ञात होता है कि समस्त शक्तियों को धारण करने वाला एक देवता 'वरुण' है। प्रकृति के समस्त उपादान उसी के विषय का हैं। वह देखता रहता है कि मनुष्य उसके नियमों का पालन करते हैं अथवा नहीं करते हैं? वह नीति अर्थात् 'ऋत' पर चलने वालों को पुरस्कृत और और अनीति अर्थात् 'अनृत' पर चलने वालों को दण्डित करता है। 'वरुण' के अतिरिक्त अन्य देवताओं का कल्पना–विधान भी किया गया, जो 'ऋत' के तीन क्षेत्रों का कार्य सम्पादन करते हैं। प्रथम क्षेत्र विश्व–व्यवस्था का है, जिसके अन्तर्गत 'ब्रह्माण्ड' के सभी पिण्ड अपने क्षेत्र में नियमित रूप से कार्य करते हैं। द्वितीय क्षेत्र नैतिक नियम का है, जिसके अन्तर्गत व्यक्तियों के पारस्परिक व्यवहार का निर्वहन होता है। तृतीय क्षेत्र, व्यक्तियों को पारस्परिक व्यवहार में नियमानुसार चलने के लिए प्रेरित करने के लिए, कर्मकाण्डीय क्षेत्र कल्पित किया गया, जिसके अन्तर्गत विभिन्न धार्मिक क्रियाओं में स्वीकृत और अस्वीकृत कर्मों का समावेश किया गया। गांधी का युग तर्कबुद्धिवाद की एक नवीन धारा का युग है, इसलिए उन्होंने 'सत्य' की धारणा को अवसर के अनुसार अपनी विशिष्ट, किन्तु सरल शैली में प्रकट किया। वे मनुष्य से 'सत्य' की खोज का आग्रह करते हुए कहते हैं कि मेरे विचार में, इस संसार में निश्चितताओं की आशा करना गलत है। जो कुछ हमारे चारों ओर घटित हो रहा है, अनिश्चित है। बस, एक ही सर्वोच्च सत्ता 'सत्य' यहाँ है, जो गोपन है, किन्तु निश्चित है। वह व्यक्ति भाग्यशाली है, जो इस निश्चित सत्ता की एक झलक पाकर उसके साथ अपनी जीवन–नैया को बांध देता है। इस निश्चित सत्ता 'सत्य' की खोज ही जीवन का परमार्थ है। गांधी कहते हैं कि 'सत्य' का शोध पहली चीज है। इसके होने से सौन्दर्य और शुभत्व इसमें स्वतः ही जुड़ जाएगे। मैं समझता हूँ कि ईसा मसीह सर्वोत्कृष्ट कलाकार थे। चूंकि उन्होंने 'सत्य' के दर्शन किए थे और उसे अभिव्यक्त किया था। ऐसे ही मोहम्मद भी थे, जिनकी कुरान अरबी साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कृति है। दोनों ने पहले 'सत्य' को पाने का प्रयास किया था, इसलिए उनकी वाणी में अभिव्यक्ति का सौन्दर्य सहज ही आ गया। मुझे इसी सौन्दर्य और 'सत्य' की चाह है। 'सत्य' के मार्ग पर चलने के लिए 'अहिंसा' गांधी का मूल मंत्र था और जो लोग 'सत्य' के रूप में इस सृष्टि के दैवीय नियम को नहीं मानने वाले थे, वे 'अहिंसा' के रास्ते पर चलकर उनका हृदय–परिवर्तन करना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने अनुभव–विज्ञान पर आधारित एक तकनीक 'सत्याग्रह' विश्व के समक्ष रखी। सत्याग्रह की

तकनीक को अपनाने वालों के लिए यह अनिवार्य है कि वे उचितानुचित का निर्णय सावधानीपूर्वक करें। 'ऋग्वेद' भी यही कहता है कि व्यक्ति ज्ञानाज्ञान की विशेष पहिचान और उचितानुचित की यथायोग्य विवेचना करें।

'ऋग्वेद' में 'ऋत' किस प्रकार एक नैतिक विधान है, यह कीथ महोदय एक उदाहरण से स्पष्ट करते हैं। वे कहते हैं कि अगम्य–गम्य की अभद्रता को मानती हुई भी यमी जब यम के साथ एक होने की अभ्यर्थना करती है, तब यम उत्तर देते हैं कि ऐसा करना 'ऋत' के प्रतिकूल होगा। स्पष्ट है कि 'ऋत' निश्चय ही केवल एक प्राकृतिक अथवा भौतिक एवं याज्ञिक अवधारणा ही नहीं, एक नैतिक विधान भी है। 'ऋग्वेद' में कहा गया है कि 'ऋत' के अनुसार चलना 'व्रत' है।

निष्कर्ष

'ऋत' और 'सत्य' के व्यापक आधार और मनुष्यों के प्रति इनके निर्देशों को देखते हुए इन्हें, वैश्वीकरण के वर्तमान युग में, 'ग्लोबल टर्म्स' के रूप में देखा जाना चाहिए। जब कुछ नहीं था, तब 'ऋत' था या 'सत्य' के होने से ही सब कुछ है, यह एक ही तथ्य है। ऋताभाव अथवा सत्याभाव की कल्पना ही नहीं की जा सकती। भारतीय दर्शन और नीति के इतिहास की पृष्ठभूमि में इन प्रत्ययों का तुलनात्मक अध्ययन, भले ही 'सत्य' की अवधारणा गांधी की हो या किसी अन्य विचारक की, आलोचना की विधा को एक नया स्वरूप दे सकता है। यदि दर्शन, समाज–विज्ञान और शोध में रुचि रखने वाले लोग 'आलोचना के लिए आलोचना' अथवा 'टिप्पणी के लिए टिप्पणी' न करें, तो अनेक नवीन निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। भूत को वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में देखे जाने की आवश्यकता हर युग में रही है और इतिहासकारों का इसमें विशिष्ट योगदान रहा है। अतरू इतिहास के क्षेत्र में काम करने वाले अध्येताओं के लिए 'ऋग्वेद' के 'ऋत' और गांधी के 'सत्य' की तुलना गवेषणा के नवीन द्वार खोलती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *'इन सर्च ऑफ दि सुप्रीम : वोल्यूम 1' महात्मा गांधी, सम्पादक वी. बी. खेर, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1961.*
2. *'ऋग्वेदभाष्यम्' प्रथमो भागः, महर्षि दयानंद सरस्वती, सम्पादक परमहंस स्वामी जगदीशानन्द सरस्वती, मानव उत्थान संकल्प संस्थान, नई दिल्ली, 2010.*
3. *'ऋग्वेदभाष्यम्' द्वितीयो भागः, महर्षि दयानंद सरस्वती, सम्पादक परमहंस स्वामी जगदीशानन्द सरस्वती, मानव उत्थान संकल्प संस्थान, नई दिल्ली, 2010.*
4. *'गांधी पश्चात् शांति आंदोलन',अनिल धर,जैन विश्वभारती संस्थान (मानित विश्वविद्यालय), लाडनूं, 2015.*
5. *'दर्शन दिग्दर्शन', राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, नई दिल्ली, 1998.*
6. *'दि माइथोलोजी ऑफ आल रेसेज : वोल्यूम 6', पीडीएफ,* http://www.mindserpent.com, 2017-
7. *'भारतीय चिंतन परम्परा', के. दामोदरन, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि., नई दिल्ली, 2009*
8. *'भूमंडलीकरण के युग में पूंजीवाद', समीर अमीन, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, 2003.*
9. *'महात्मा गांधी के विचार', आर. के. प्रभू और यू. आर. राव, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2002.*
10. *'महात्मा गांधी : जीवन और दर्शन', रोमां रोलां, अनुवाद प्रफुल्लचंद्र ओझा 'मुक्त', लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2009.*
11. *'महात्मा : लाइफ ऑफ् मोहनदास करमचंद गांधी' वोल्यूम 1 से 8, डी. जी. तेन्दुलकर,* http://www.mkgandhi.org. 2017-
12. *'सत्य के साथ मेरे प्रयोग', मोहनदास करमचंद गांधी, अनुवाद सूरज प्रकाश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011.*
13. *'मुण्डकोपनिषद्', गीता प्रेस, गोरखपुर, 2004.*
14. *'सत्याग्रह की संस्कृति', नंदकिशोर आचार्य, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, 2008.*
15. *'सत्यार्थ प्रकाश',महर्षि दयानंद सरस्वती, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, 2004.*